[2019] 2 उम. नि. प. 1

अब्दुल वहाब

बनाम

केरल राज्य और अन्य

13 सितम्बर, 2018

मुख्य न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा और न्यायमूर्ति (डा.) डी. वाई. चन्द्रचूड़

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 321 और 397 – अभियोजन वापस लेना – दांडिक कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान लोक अभियोजक द्वारा अभियोजन वापस लेने की ईप्सा करना – मजिस्ट्रेट द्वारा लोक अभियोजक के अनुरोध को इस आधार पर मंजूर करना कि मामले में दोषसिद्धि की संभावना नहीं है और लोक न्याय की दृष्टि से अभियोजन वापस लेना आवश्यक है – चूंकि लोक अभियोजक ने अभियोजन को वापस लेने के लिए केवल सरकारी अधिसूचना का अवलंब लिया था और ऐसी वापसी के कारण लोक हित पर पड़ने वाले प्रभाव के संबंध में अपने विवेकबुद्धि का प्रयोग नहीं किया था, इसलिए, मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश, धारा 321 के मानदंडों के अंतर्गत नहीं आएगा ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 301 और 24 – लोक अभियोजक की भूमिका – लोक अभियोजक को उत्तरदायी रूप से कार्य करना होता है और वह अभियोजन को वापस लेने के कारण लोक हित पर पड़ने वाले प्रभाव पर विचार किए बिना अभियोजन को वापस लेने के लिए पूर्णतः सरकारी अनुदेशों द्वारा मार्गदर्शित नहीं हो सकता है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 397 – पुनरीक्षण अधिकारिता – अभियोजन वापस लेने के लिए अनुज्ञात करने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश में प्रत्यक्ष त्रुटि में सुधार करने के लिए पुनरीक्षण आवेदन – उच्च

न्यायालय द्वारा मजिस्ट्रेट के आदेश की शुद्धता के संबंध में अपनी विवेकबुद्धि का प्रयोग किए बिना आवेदकों को मामले से असंबद्ध व्यक्ति मानना – जब मजिस्ट्रेट के आदेश में विद्यमान प्रत्यक्ष त्रुटि की जानकारी दे दी जाती है तब आवेदकों को परव्यक्ति नहीं माना जा सकता है, विशेषकर तब जब कि पुनरीक्षण आवेदन में उठाया गया मामला गंभीर प्रकृति का हो, इसलिए, पुनरीक्षण आवेदन खारिज करने वाला उच्च न्यायालय का आदेश त्रुटिपूर्ण होगा ।

प्रस्तुत मामले में, चौथे प्रत्यर्थी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 195क और धारा 506 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दांडिक कार्यवाही का सामना किया था । दांडिक मामले के लंबित रहने के दौरान, लोक अभियोजक द्वारा अभियोजन को वापस लेने के लिए एक आवेदन फाइल किया गया था । मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने वह आवेदन मंजूर कर लिया और लोक अभियोजक को अभियोजन वापस लेने के लिए अनुज्ञात किया । उक्त आदेश को प्रस्तुत अपीलार्थी द्वारा दांडिक पुनरीक्षण आवेदन में चुनौती दी गई थी । उच्च न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई थी कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने मामले में अंतर्वलित संविवाद को पूर्णतः अनदेखा करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया है और इसके अलावा, वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए तत्पर नहीं रहा । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि अभिलेख पर विद्यमान उस सामग्री से, जिस पर अभियोजन आधारित है, यह प्रकट होता है कि भले ही विचारण सही दिशा में आरंभ किया जाए तो भी किसी प्रयोजन की पूर्ति नहीं होगी, तो ऐसे अभियोजन को वापस लेने के लिए अनुज्ञात किया जा सकता है बशर्ते किसी अन्य बाह्य हेतुक का उल्लेख न किया गया हो । आवेदक वास्तविक परिवादी नहीं हैं, वे केवल पर-व्यक्ति हैं । दोनों आवेदनों में, आवेदकों का परिवाद से कोई संबंध नहीं है क्योंकि यह परिवाद कोई प्राइवेट परिवाद नहीं है । जब वास्तविक परिवादी प्रश्न नहीं कर रहा है तो पर-व्यक्ति कैसे प्रश्न कर सकता है और यह भी स्पष्ट नहीं है कि उनका हित क्या है । यह पूर्णतः स्पष्ट है कि निचले न्यायालयों के पास अभियोजक को अभियोजन वापस लेने के लिए अनुज्ञात करने का न्यायौचित्य था और जहां तक पुनरीक्षण आवेदकों का

प्रश्न है, वे मुकदमेबाजी से पूर्णतः अनभिज्ञ हैं और उनके पास उसे प्रश्नगत करने का अधिकार नहीं है । उच्च न्यायालय ने आवेदन खारिज कर दिए । इसके विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह बिल्कुल स्पष्ट है कि कानूनी स्कीम के अधीन यथास्थिति, लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है और उससे एक निष्पक्ष व्यक्ति के रूप में कार्य करने की प्रत्याशा की जाती है । उसे अपने विवेक का प्रयोग करना होता है और यदि ऐसी अनुज्ञा प्रदान की जाती है तो समाज पर पड़ने वाले उसके प्रभाव पर विचार करना होगा । (पैरा 10)

वर्तमान मामले में, जैसा कि दृष्टव्य है, विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने गुणागुण पर विचार किया और यह राय अभिव्यक्त की कि इस मामले की परिणति दोषसिद्धि में होने की संभावना नहीं है । यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि लोक अभियोजक ने अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया था बल्कि केवल सरकारी अधिसूचना को अभिलेख पर रखा था । उच्च न्यायालय ने याचियों को इस आधार पर अनुपयुक्त पाया है कि वे पर-व्यक्ति हैं, जो कि इस मामले से असंबद्ध हैं । उन्होंने पुनरीक्षण फाइल किए थे और उच्च न्यायालय को पुनरीक्षणों को ग्रहण करने और उन त्रुटियों को, जो कि प्रत्यक्ष हैं या जो पूर्णतः अनपेक्षित हैं, सुधारने की शक्ति प्रदत्त की गई है । यह उच्च न्यायालय के अधीक्षण की शक्ति है । इस दृष्टि से याचियों को बाहरी व्यक्ति नहीं माना जा सकता था क्योंकि उन्होंने इसकी जानकारी उच्च न्यायालय को दे दी है और इसलिए उसे आदेश की शुद्धता के संबंध में अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए था । निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन तुच्छ नहीं थे । वे गंभीर प्रकृति के थे । यह एक ऐसा मामला है जिसमें लोक अभियोजक ने डाकघर के रूप में कार्य किया था और विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने ऐसा आदेश पारित किया है जो कि संहिता की धारा 321 के पैरामीटर के भीतर नहीं है । उसे संहिता की धारा 321 के अधीन अनुबद्ध वास्तविक कसौटी और इस न्यायालय के विनिश्चयों को

लागू करना चाहिए था किन्तु ऐसा नहीं किया गया है । (पैरा 12)

यह सही है कि तुच्छ मुकदमेबाज़ी होती है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि ऐसे निर्दोष पीड़ित नहीं हैं जो उत्सुकतापूर्वक न्याय की प्रतीक्षा करते हैं । इसके अलावा, कतिपय दांडिक अपराधों से सामाजिक ढांचा अस्त-व्यस्त हो जाता है । प्रत्येक नागरिक इसका जवाब देने के लिए किसी न किसी रीति में अंतर्वलित हो जाता है और इसीलिए लोक अभियोजक को शक्ति प्रदान की जाती है और उस पर वास्तविक कर्तव्य अधिरोपित किया जाता है । उसे उत्तरदायी रूप से कार्य करना होता है । उसे पूर्णतः सरकार के अनुदेशों द्वारा मार्गदर्शित नहीं होना होता है बल्कि उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह न्यायालय की सहायता करे और न्यायालय पूर्व-निर्णयों को ध्यान में रखने और समुचित आदेश पारित करने के लिए कर्तव्यबद्ध है । (पैरा 13)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	(2016) 3 एस. सी. सी. 736 : **वी. एल. एस. फाइनेंस लिमिटेड** बनाम **एस. पी. गुप्ता और एक अन्य** ;	11
[2014]	(2014) 10 एस. सी. सी. 380 : **बलीराम मुरलीधर** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य** ;	10
[2011]	2008 का दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 3543, जिसका निर्णय 7 अप्रैल, 2011 को किया गया : **केरल राज्य** बनाम **विजय कुमार** ;	2
[2005]	(2005) 2 एस. सी. सी. 377 : **राहुल अग्रवाल** बनाम **राकेश जैन** ;	9
[1997]	1997 क्रिमिनल ला जर्नल 3242 : **पीपल्स यूनियन फ़ॉर सिविल लिबर्टीज़ (दिल्ली)** बनाम **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो और अन्य** ;	2

[1987] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 877 :
शिव नंदन पासवान बनाम **बिहार राज्य** ; 2, 3, 8

[1980] ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 1510 :
राजेन्द्र कुमार जैन बनाम **बिहार राज्य** ; 2

[1980] (1980) 3 एस. सी. सी. 435 :
राजेन्द्र कुमार जैन बनाम **राज्य** ; 8

[1980] (1980) 2 एस. सी. सी. 155 :
सुभाष चन्द्र बनाम **राज्य (चंडीगढ़ प्रशासन)** ; 8

[1977] (1977) 4 एस. सी. सी. 448 :
बलवंत सिंह बनाम **बिहार राज्य** ; 8

[1976] (1976) 1 एस. सी. सी. 421 :
बंसी लाल बनाम **चन्दन लाल** ; 8

[1957] ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 389 :
बिहार राज्य बनाम **राम नरेश पांडे** । 8

दांडिक अपीली अधिकारिता : 2018 की दांडिक अपील सं. 1047.

2012 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 2021 में केरल उच्च न्यायालय की एर्नाकुलम न्यायपीठ के तारीख 1 जुलाई, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से सर्वश्री रघनेठ बसंत, मिथुन वर्गीज़, (सुश्री) नमिता वाली, सेंथिल जगदीशन्, सी. के. शशि, (सुश्री) नयनतारा राय, मुश्ताक सलीम, उस्मान घनी खान, देव प्रकाश और राधे श्याम जेना

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने दिया ।

मु. न्या. मिश्रा – चौथे प्रत्यर्थी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 195क और धारा 506 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दांडिक कार्यवाही का सामना किया था । दांडिक मामले के लंबित रहने के दौरान, लोक अभियोजक द्वारा अभियोजन को वापस लेने के लिए एक

आवेदन फाइल किया गया था । विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने तारीख 4 जनवरी, 2012 के आदेश द्वारा वह आवेदन मंजूर कर लिया और लोक अभियोजक को अभियोजन वापस लेने के लिए अनुज्ञात किया ।

2. उक्त आदेश को प्रस्तुत अपीलार्थी द्वारा 2012 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 2020 और 2021 में चुनौती दी गई थी । उच्च न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई थी कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने मामले में अंतर्वलित संविवाद को पूर्णतः अनदेखा करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया है और इसके अलावा, वह दंड प्रक्रिया संहिता (जिसे संक्षेप में 'संहिता' कहा गया है) की धारा 321 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए तत्पर नहीं रहा । न्यायालय ने **शिव नंदन पासवान** बनाम **बिहार राज्य**[1], **पीपल्स यूनियन फ़ॉर सिविल लिबर्टीज़ (दिल्ली)** बनाम **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो और अन्य**[2], **केरल राज्य** बनाम **विजय कुमार**[3] और **राजेन्द्र कुमार जैन** बनाम **बिहार राज्य**[4] वाले मामलों में के विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया और यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन वापस लेने की सम्मति देने से लोक हित और लोक नीति खतरे में पड़ जाएगी । खंड न्यायपीठ ने इसके आगे यह राय व्यक्त की कि कोई दांडिक कार्यवाही किसी प्राइवेट शिकायत के निवारण के लिए कार्यवाही नहीं होती है बल्कि वह एक ऐसी कार्यवाही होती है जो समाज के हित में अपराधी को दंडित करने के प्रयोजनार्थ संस्थित की जाती है । चूंकि इसका उद्देश्य समाज में स्थिरता और व्यवस्था बनाए रखना होता है इसलिए इसमें प्राइवेट हित का कोई प्रभाव नहीं होगा । समाज की व्यापक भलाई के लिए अधिनियमित दांडिक कानून के उद्देश्यों में एक उद्देश्य समाज के हित में अपराधी को दंडित करना होता है । उच्च न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि संहिता की धारा 321 के अधीन न्यायालय की सम्मति एक निर्णायक कारक है । इससे यह उपदर्शित होता है कि संपूर्ण प्रक्रिया एक

---

[1] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 877.

[2] 1997 क्रिमिनल ला जर्नल 3242.

[3] 2008 का दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 3543 जिसका निर्णय 7 अप्रैल, 2011 को किया गया ।

[4] ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 1510.

परिवाद और विभिन्न विचारणाओं, जैसे अपराध की गंभीरता, अभियोजन वापस लेने के प्रभाव और संपूर्ण पद्धति में लोक विश्वास के परिणाम पर आधारित होती है । लोक हित और लोक नीति प्रमुख विशेषताएं हैं क्योंकि ऐसा आवेदन करते समय अभियोजन द्वारा प्रदर्शित की जाने वाली वस्तुनिष्ठता का समाज पर गंभीर प्रभाव पड़ता है । यद्यपि अभियोजन वापस लेने संबंधी आवेदन को नामंजूर करने के लिए अपराध की प्रकृति एक विधिमान्य आधार नहीं हो सकता है तथापि, उन सभी आधारों का मूल्यांकन करना न्यायालय का कर्तव्य है, जिनके कारण अभियोजन पक्ष मामले को वापस लेने की ईप्सा करने के लिए तत्पर हुआ । किसी विशेष कारण का अनुपालन करने की बजाय समग्र दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है । वापस लेने संबंधी आवेदन से लोक अभियोजक का स्वतंत्र विवेक अभिव्यक्त होता है । व्यापक परिप्रेक्ष्य यह है कि लोक न्याय में संहिता की धारा 321 के अधीन अनुध्यात संपूर्ण दर्शनशास्त्र अंतर्निहित होता है । विवेक का प्रयोग करने संबंधी लोक अभियोजक की कार्रवाई न केवल उसकी न्यायसंगत प्रकृति को प्रकट करने के लिए है बल्कि उसमें युक्तियुक्तता भी होनी चाहिए क्योंकि अभियोजक को समाज के उस हित को ध्यान में रखना होता है जिसके विरुद्ध अभिकथित रूप से अपराध कारित किया गया है ।

3. उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यथा-पूर्वोक्त रूप में मत व्यक्त करने के पश्चात् **शिव नन्दन पासवान** (उपर्युक्त) वाले मामले में कथित सिद्धातों, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में प्रस्तुत की गई शिकायत, अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों पर विस्तारपूर्वक विचार किया और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "उपर्युक्त मामले में न तो भारतीय दंड संहिता की धारा 195 के अधीन अपराध और न ही धारा 506 के अधीन अपराध साबित किया गया है । यदि अभिलेख पर विद्यमान उस सामग्री से, जिस पर अभियोजन आधारित है, यह प्रकट होता है कि भले ही विचारण सही दिशा में आरंभ किया जाए तो भी किसी प्रयोजन की पूर्ति नहीं होगी, तो ऐसे अभियोजन को वापस लेने के लिए अनुज्ञात किया जा सकता है बशर्ते किसी अन्य बाह्य हेतुक का उल्लेख न किया गया हो । वास्तव में, दांडिक न्याय प्रशासन की प्रक्रिया में यह

कहा जाता है कि अभियोजन वापस लेने के बारे में भी यह माना जा सकता है वह न्याय प्रशासन में सहायक होगा । अपराधियों को अभियोजित न करने या पहले से आरंभ किए गए अभियोजन पर आगे कार्यवाही न करने का अभियोजक का विनिश्चय एक ऐसा विनिश्चय है जो ऐसी सामग्री की पूर्णरूपेण परीक्षा करने के पश्चात् किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप ऐसा युक्तियुक्त विनिश्चय किया गया है । न्यायालय को यह देखना होता है कि क्या आवेदन लोक नीति और न्याय के हित में सद्भावपूर्वक किया गया है अथवा नहीं और ऐसी कार्यवाही करते समय उसे यह देखना होगा कि ऐसी सम्मति प्रदान करने के परिणामस्वरूप अन्याय की अभिव्यक्ति तो नहीं होगी । एक बार जब न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आवेदन उचित रूप से किया गया है और लोक अभियोजक द्वारा मामले पर स्वतंत्र रूप से विचार किया गया है और उसने स्वयं में निहित विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय सद्भाविक रूप में कार्य किया है तब न्यायालय को ऐसी वापसी की अनुज्ञा देनी चाहिए ।"

पुनः यह कहा :–

"न तो शिकायतकर्ता और न ही आरोप पत्र के साक्षी को अभियोजन वापस लेने संबंधी लोक अभियोजक के विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय सुने जाने का अधिकार है । ऐसे किसी नागरिक के लिए, जिसका किसी दखलंदाज़ व्यक्ति से अधिक गहरा हित है, न्यायालय के द्वार अधखुले रखे जाएंगे । उसे द्वार से ही वापस नहीं किया जा सकता है । यदि उसके द्वारा उठाया गया मुद्दा न्याय्य है तो वह विचार किए जाने के लिए शेष रहेगा । तथापि, यदि वह अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत दांडिक मामले में मात्र जांच और परीक्षा किए जाने वाला प्रश्न है तो समुचित समय पर समुचित न्यायालय के समक्ष ऐसे प्रश्न उठाने और उनके विरुद्ध संस्थित कार्यवाहियों को चुनौती देने का केवल उनका ही न कि लोक हित मुकदमेबाजी की आड़ में पर-व्यक्तियों का अधिकार है । केवल वही व्यक्ति लोक हित मुकदमेबाजी संस्थित कर सकता है जो सद्भाविक रूप से कार्य कर रहा है और जिसका उन कार्यवाहियों में पर्याप्त हित है और न्यायालय को परोक्ष कारणों से

अपनी प्रक्रिया का दुरुपयोग अनुज्ञात नहीं करना चाहिए । दंड विधि का प्रयोग प्राइवेट व्यक्तियों के बीच प्रतिषेध के हथियार के रूप में करने की अनुज्ञा नहीं दी जानी चाहिए ।"

उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण आवेदनों का निपटारा करते हुए आगे यह कथन किया :–

"आवेदक वास्तविक परिवादी नहीं हैं, वे केवल पर-व्यक्ति हैं । दोनों आवेदनों में, आवेदकों का परिवाद से कोई संबंध नहीं है क्योंकि यह परिवाद कोई प्राइवेट परिवाद नहीं है । जब वास्तविक परिवादी प्रश्न नहीं कर रहा है तो पर-व्यक्ति कैसे प्रश्न कर सकता है और यह भी स्पष्ट नहीं है कि उनका हित क्या है । ऊपर कथित संपूर्ण सामग्री को पढ़ने से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि निचले न्यायालयों के पास अभियोजक को अभियोजन वापस लेने के लिए अनुज्ञात करने का न्यायौचित्य था और जहां तक पुनरीक्षण आवेदकों का प्रश्न है, वे मुकदमेबाजी से पूर्णतः अनभिज्ञ हैं और उनके पास उसे प्रश्नगत करने का अधिकार नहीं है ।"

4. उच्च न्यायालय ने इस दृष्टिकोण से आवेदन खारिज कर दिए ।

5. हमने अपीलार्थी की ओर से विद्वान काउन्सेल श्री रघनेठ बसंत, प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 की ओर से विद्वान काउन्सेल श्री सी. के. शशि और प्रत्यर्थी सं. 4 की ओर से विद्वान काउन्सेल श्री राधे श्याम जेना की सुनवाई की ।

6. इस संविवाद का मूल्यांकन करने के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश का उल्लेख करना आवश्यक है । उसने उप-निदेशक, अभियोजन द्वारा फाइल किए गए आवेदन के प्रति निर्देश किया है जिससे यह स्पष्ट है कि सरकार को मामले को वापस लेने के संबंध में कोई आपत्ति नहीं थी और आवेदन के साथ सरकार का विनिश्चय फाइल किया गया है । विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि उसने आवेदन की परीक्षा की है और उसका यह समाधान हो गया है कि उसमें कथित आधार, मामले को वापस लेने के लिए सम्मति देने हेतु पर्याप्त हैं । उसने सामग्री का विश्लेषण करने के पश्चात् आगे यह राय व्यक्त की है कि दांडिक मामले में सफल होने की कोई

संभावना नहीं है और इसलिए अभियोजन को वापस लेना लोक न्याय के बेहतर संवर्धन के लिए आवश्यक है ।

7. संहिता की धारा 321 निम्नलिखित रूप में है :-

"**321. अभियोजन वापस लेना** – किसी मामले का भारसाधक कोई लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक निर्णय सुनाए जाने के पूर्व किसी समय किसी व्यक्ति के अभियोजन को या तो साधारणतः या उन अपराधों में से किसी एक या अधिक के बारे में, जिनके लिए उस व्यक्ति का विचारण किया जा रहा है, न्यायालय की सम्मति से वापस ले सकता है और ऐसे वापस लिए जाने पर –

(क) यदि वह आरोप विरचित किए जाने के पहले किया जाता है तो अभियुक्त ऐसे अपराध या अपराधों के बारे में उन्मोचित कर दिया जाएगा;

(ख) यदि वह आरोप विरचित किए जाने के पश्चात् या जब इस संहिता द्वारा कोई आरोप अपेक्षित नहीं है तब किया जाता है तो वह ऐसे अपराध या अपराधों के बारे में दोषमुक्त कर दिया जाएगा :

परन्तु जहां –

(i) ऐसा अपराध किसी ऐसी बात से संबंधित किसी विधि के विरुद्ध है जिस पर संघ को कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, अथवा

(ii) ऐसे अपराध का अन्वेषण दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 (1946 का 25) के अधीन दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा किया गया है, अथवा

(iii) ऐसे अपराध में केन्द्रीय सरकार को किसी संपत्ति का दुर्विनियोग, नाश या नुकसान अंतर्ग्रस्त है, अथवा

(iv) ऐसा अपराध केन्द्रीय सरकार की सेवा में किसी व्यक्ति द्वारा किया गया है जब वह अपने पदीय

कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य कर रहा है या कार्य करना तात्पर्यित है,

और मामले का भारसाधक अभियोजक केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त नहीं किया गया है तो वह जब तक केन्द्रीय सरकार द्वारा उसे ऐसा करने की अनुज्ञा नहीं दी जाती है अभियोजन को वापस लेने के लिए न्यायालय से उसकी सम्मति के लिए निवेदन नहीं करेगा तथा न्यायालय अपनी सम्मति देने के पूर्व, अभियोजक को यह निदेश देगा कि वह अभियोजन को वापस लेने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा दी गई अनुज्ञा उसके समक्ष पेश करे ।"

उक्त उपबंध द्वारा लोक अभियोजक को किसी अपराध के अभियुक्त किसी व्यक्ति के अभियोजन को, उन दोनों दशाओं में जब कोई साक्ष्य नहीं लिया गया है और भले ही संपूर्ण साक्ष्य ले लिया गया है, वापस लेने के लिए प्राधिकार प्रदत्त किया गया है । उक्त शक्ति का प्रयोग करने के लिए बाहरी सीमा "निर्णय सुनाए जाने के पूर्व किसी समय" अभिव्यक्ति द्वारा मार्गदर्शित होती है ।

8. **शिव नन्दन पासवान** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान पीठ ने **बंसी लाल** बनाम **चन्दन लाल**[1], **बलवंत सिंह** बनाम **बिहार राज्य**[2], **सुभाष चन्द्र** बनाम **राज्य (चंडीगढ़ प्रशासन)**[3], **राजेन्द्र कुमार जैन** बनाम **राज्य**[4] वाले मामलों के प्रति निर्देश करने के पश्चात् और **बिहार राज्य** बनाम **राम नरेश पांडे**[5] वाले मामले में कथित सिद्धांतों के प्रति निर्देश करने के पश्चात् निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"99. उपर्युक्त सभी विनिश्चयों में राम नरेश पांडे वाले मामले के तर्काधार का अनुसरण किया गया है और उस विनिश्चय में स्थापित सिद्धांतों के बारे में संदेह नहीं किया गया ।

---

[1] (1976) 1 एस. सी. सी. 421..

[2] (1977) 4 एस. सी. सी. 448.

[3] (1980) 2 एस. सी. सी. 155.

[4] (1980) 3 एस. सी. सी. 435.

[5] ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 389.

100. प्रस्तुत मामले पर इन्हीं विनिश्चयों के प्रकाश में ही विचार किया जाना है । मेरा यह निष्कर्ष है कि लोक अभियोजक द्वारा वापसी के लिए आवेदन उसके समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री पर सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात् सद्भाविक रूप से किया गया है और मजिस्ट्रेट द्वारा दिया गया सम्मति का आदेश भी ऊपर यथा-उपदर्शित विभिन्न ब्यौरों पर सम्यक् रूप से विचार करने के पश्चात् दिया गया था । धारा 321 की स्कीम को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय के लिए मामले के तथ्यों और साक्ष्य के संबंध में विस्तृत जांच प्रारंभ करना अनुचित होगा क्योंकि ऐसा करना धारा के उद्देश्य और आशय के लिए हानिकारक होगा ।"

9. **राहुल अग्रवाल** बनाम **राकेश जैन**[1] वाले मामले में न्यायालय ने संहिता की धारा 321 के अधीन दिए गए आवेदन पर विचार करते समय कतिपय विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया जिनमें **शिव नन्दन पासवान** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान पीठ के पूर्ववर्ती विनिश्चय के प्रति निर्देश किया गया है और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :-

"10. इन विनिश्चयों तथा इसी प्रश्न से संबंधित अन्य विनिश्चयों से विधि अत्यंत स्पष्ट है कि अभियोजन वापस लेने की अनुज्ञा केवल न्याय के हित में दी जा सकती है । भले ही सरकार लोक अभियोजक को अभियोजन को वापस लेने का निदेश देती है और उस आशय का आवेदन फाइल किया जाता है तो भी न्यायालय को सभी सुसंगत परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए और यह पता लगाना चाहिए कि अभियोजन को वापस लेने से न्याय के हित का संवर्धन होगा अथवा नहीं । यदि मामले के दोषमुक्ति में परिणत होने की संभावना है और मामले को जारी रखने से अभियुक्त को केवल गंभीर उत्पीड़न कारित हो सकता है तो न्यायालय अभियोजन को वापस लेने की अनुज्ञा दे सकता है । यदि अभियोजन को वापस लेने से पक्षकारों के बीच विवाद के समाप्त होने और सौहार्द पैदा होने की संभावना है और वह न्याय

---

[1] (2005) 2 एस. सी. सी. 377.

के सर्वोत्तम हित में होगा तो न्यायालय अभियोजन को वापस लेने की अनुज्ञा दे सकता है । न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 के अधीन विवेकाधिकार का प्रयोग समस्त सुसंगत तथ्यों पर सम्यक् रूप से विचार करने के पश्चात् सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए और इसका प्रयोग अभियोजन को दबाने के लिए नहीं किया जाएगा, जो कि व्यथित पक्षकारों या राज्य के अनुरोध पर उनकी शिकायत के निवारण के लिए किया जा रहा है । प्रत्येक अपराध समाज के प्रति अपराध होता है और यदि अभियुक्त ने कोई अपराध कारित किया है तो समाज की यह मांग होती है कि उसे दंडित किया जाना चाहिए । ऐसे व्यक्ति को दंडित करना, जिसने अपराध-कर्म किया है, समाज में विधि-व्यवस्था और शांति बनाए रखने की आवश्यक अपेक्षा है । अतः, अभियोजन की वापसी केवल तभी अनुज्ञात की जाएगी जब उसके संबंध में विधिमान्य कारण साबित हो जाते हैं ।"

10. **बलीराम मुरलीधर** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में उक्त उपबंध का मूल्यांकन करते समय इस प्रकार अधिकथित किया गया है :–

"18. ..... लोक अभियोजक की यह बाध्यता है कि वह इस बात का कथन करे कि उसने किस सामग्री पर विचार किया है । इसे संक्षेप में उपवर्णित करना होगा । न्यायालय से, जैसा कि **अब्दुल करीम** वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, एक सूचित सहमति देने की अपेक्षा की जाती है । न्यायालय के लिए अपना यह समाधान करना बाध्यकर है कि सामग्री से युक्तियुक्त रूप से यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि अभियोजन को वापस लेने से लोक हित की पूर्ति होगी । सामग्री को महत्व देना न्यायालय के कार्यक्षेत्र के भीतर नहीं है । तथापि, न्यायालय की ओर से यह अवेक्षा करना आवश्यक है कि क्या सम्मति प्रदान करने से न्याय के मार्ग में बाधा उत्पन्न होगी या प्रत्यक्ष अन्याय कारित होगा । न्यायालय के लिए संहिता की धारा

---

[1] (2014) 10 एस. सी. सी. 380.

321 के अधीन सम्मति देते समय अपने न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग करना अपेक्षित है और जैसा कि विधि द्वारा स्थापित है, न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग यांत्रिक रीति में नहीं किया जाना है । न्यायालय अनुरोध करने मात्र से ऐसी सम्मति नहीं दे सकता है । न्यायालय से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह इस बात का पता लगाने के लिए अभिलेख पर विद्यमान सामग्री पर विचार करे कि आवेदन सद्भाविक रूप से फाइल किया गया था और वह लोक हित और न्याय के हित में है । न्यायालय जिस एक अन्य पहलू को ध्यान में रखने के लिए आबद्ध है वह यह है कि ऐसी वापसी से न्याय के हित का संवर्धन होगा अथवा नहीं । इसके लिए सतर्क और विवेकशील विवेकाधिकार का प्रयोग करना आवश्यक है क्योंकि कतिपय अपराध राज्य और समाज के विरुद्ध होते हैं और उनमें यह मांग होती है कि न्याय किया जाए । इससे समाज में विधि और व्यवस्था की स्थिति बनी रहती है । लोक अभियोजक राज्य सरकार की ओर से डाकघर की तरह कार्य नहीं कर सकता है । उसे सद्भावपूर्वक कार्य करना पड़ता है, अभिलेख पर विद्यमान सामग्री का परिशीलन करना होता है और इस संबंध में निष्पक्ष राय बनानी होती है कि मामले को वापस लेने से वास्तव में व्यापक लोक हित का साधन होगा । इस संबंध में लोक अभियोजक के बारे में सरकार का आदेश बाध्यकारी नहीं है । वह संहिता के अधीन अपनी विधिपूर्ण बाध्यताओं के प्रति अनभिज्ञ नहीं रह सकता है । उसे न्यायालय के प्रति अपने कर्तव्य तथा सामूहिक कर्तव्य को निरंतर स्मरण रखना होगा ।"

उपर्युक्त नज़ीरों से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि कानूनी स्कीम के अधीन यथास्थिति, लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है और उससे एक निष्पक्ष व्यक्ति के रूप में कार्य करने की प्रत्याशा की जाती है । उसे अपने विवेक का प्रयोग करना होता है और यदि ऐसी अनुज्ञा प्रदान की जाती है तो समाज पर पड़ने वाले उसके प्रभाव पर विचार करना होगा ।

11. **वी. एल. एस. फाइनेंस लिमिटेड** बनाम **एस. पी. गुप्ता और**

एक अन्य[1] वाले मामले में दो न्यायाधीशो की न्यायपीठ ने विधि का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करने के पश्चात्, निम्न प्रकार निर्णय दिया :-

> "42. हमने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 के अधीन फाइल किए गए किसी आवेदन पर कार्यवाही करते समय न्यायालय की अधिकारिता से संबंधित सिद्धांतों को प्रगणित किया है और ऐसे लोक अभियोजक की भूमिका पर भी प्रकाश डाला है, जिससे सद्भावपूर्वक कार्य करने, अभिलेख पर विद्यमान सामग्री का परिशीलन करने और इस संबंध में निष्पक्ष राय बनाने की अपेक्षा की जाती है कि अभियोजन को वापस लेने से वास्तव में व्यापक लोक हित का साधन होगा । इसमें इसके ऊपर निर्दिष्ट नज़ीरों से स्पष्ट रूप से यह परिणाम निकलता है कि लोक अभियोजक से डाकघर के रूप में कार्य करने की आशा नहीं की जाती है और उससे यह प्रत्याशा की जाती है कि वह न्यायालय के प्रति अपने कर्तव्य तथा सामूहिक रूप से अपने कर्तव्य को स्मरण रखे ।"

12. वर्तमान मामले में, जैसा कि दृष्टव्य है, विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने गुणागुण पर विचार किया और यह राय अभिव्यक्त की कि इस मामले की परिणति दोषसिद्धि में होने की संभावना नहीं है । यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि लोक अभियोजक ने अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया था बल्कि केवल सरकारी अधिसूचना को अभिलेख पर रखा था । उच्च न्यायालय ने याचियों को इस आधार पर अनुपयुक्त पाया है कि वे पर-व्यक्ति हैं, जो कि इस मामले से असंबद्ध हैं । उन्होंने पुनरीक्षण फाइल किए थे और उच्च न्यायालय को पुनरीक्षणों को ग्रहण करने और उन त्रुटियों को, जो कि प्रत्यक्ष हैं या जो पूर्णतः अनपेक्षित हैं, सुधारने की शक्ति प्रदत्त की गई है । यह उच्च न्यायालय के अधीक्षण की शक्ति है । इस दृष्टि से याचियों को बाहरी व्यक्ति नहीं माना जा सकता था क्योंकि उन्होंने इसकी जानकारी उच्च न्यायालय को दे दी है और इसलिए उसे आदेश की शुद्धता के संबंध में अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए था ।

---

[1] (2016) 3 एस. सी. सी. 736.

निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन तुच्छ नहीं थे । वे गंभीर प्रकृति की थे । यह एक ऐसा मामला है जिसमें लोक अभियोजक ने डाकघर के रूप में कार्य किया था और विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने ऐसा आदेश पारित किया है जो कि संहिता की धारा 321 के पैरामीटर के भीतर नहीं है । उसे संहिता की धारा 321 के अधीन अनुबद्ध वास्तविक कसौटी और इस न्यायालय के विनिश्चयों को लागू करना चाहिए था किन्तु ऐसा नहीं किया गया है ।

13. हम इस बात की पुनरावृत्ति करने के लिए बाध्य हैं कि तुच्छ मुकदमेबाज़ी होती है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि ऐसे निर्दोष पीड़ित नहीं हैं जो उत्सुकतापूर्वक न्याय की प्रतीक्षा करते हैं । इसके अलावा, कतिपय दांडिक अपराधों से सामाजिक ढांचा अस्त-व्यस्त हो जाता है । प्रत्येक नागरिक इसका जवाब देने के लिए किसी न किसी रीति में अंतर्वलित हो जाता है और इसीलिए लोक अभियोजक को शक्ति प्रदान की जाती है और उस पर वास्तविक कर्तव्य अधिरोपित किया जाता है । उसे उत्तरदायी रूप से कार्य करना होता है । उसे पूर्णतः सरकार के अनुदेशों द्वारा मार्गदर्शित नहीं होना होता है बल्कि उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह न्यायालय की सहायता करे और न्यायालय पूर्व-निर्णयों को ध्यान में रखने और समुचित आदेश पारित करने के लिए कर्तव्यबद्ध है ।

14. वर्तमान मामले में, चूंकि उपर्युक्त कार्यवाही नहीं की गई है इसलिए हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश तथा विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिट्रेट के आदेश को अपास्त करने और मामले को इस दृष्टि से मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की फाइल पर विप्रेषित करने के लिए बाध्य हैं कि वह इस आवेदन पर विधि के अनुसार पुनर्विचार करे और हम ऐसा निदेश देते हैं ।

15. तद्नुसार अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.